द्वितीय अध्याय

''सुरेंद्र वर्मा के उपन्यासों का विषयगत विवेचन''

द्वितीय अध्याय

''सुरेंद्र वर्मा के उपन्यासों का विषयगत विवेचन''

विषय–प्रवेश :

समकालीन उपन्यासकारों में सुरेंद्र वर्मा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है। उनकी ख्याति एक प्रयोगशील नाटककार के रूप में भी है। सुरेंद्र वर्मा ने नाटकों के अलावा साहित्य की अन्य विधाओं में भी लेखन किया है। उन्होंने अपने लेखन के द्वारा अपनी प्रतिभाशक्ति का परिचय दिया है। अमूल्य साहित्य का निर्माण करके वे हर एक के दिल पर छा गये है। डॉ. धनजंय वर्मा के शब्दों में – ''मनुष्य द्वारा जीने के लिए किया जाता संघर्ष रचना में किस हद तक वास्तविक है इसे साबित करने के लिए हर समर्थ लेखक जीवन और रचना के परिवेश से जोड़कर अपने दायित्व और रचनाधर्म का निर्वाह करता है।''[1] वर्मा जी के उपन्यासों को पढ़ते समय महसूस होता है कि परिवेश ही उनके लेखन की आधारशिला है। वे परिवेश से प्रेरणा पाकर युगीन सत्य को हमें परिचित करवाते हैं। उनके उपन्यासों में शहरी संस्कृति का चित्रण प्राय: अधिक मात्रा हुआ है। वर्मा जी ने मुंबई, दिल्ली, कोलकत्ता तथा चेन्नई आदि स्थानों, परिवेश और वहाँ कि स्थिति का जिक्र अपने उपन्यासों में किया है।

लेखक द्वारा बेजोड़ साहित्य का निर्माण तभी होता है, जब वह विषय पूरी तरह खुलकर पाठकों के सामने रखता है। वे एक साक्षात्कार में कहते हैं – ''रचना की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि इसमें कोई दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता। प्रक्रिया के दौरान किसी स्तर पर मैं एकदम अकेला होता हूँ। शायद हर रचनाकार होता है। यह एक प्रकार की जरूरत नहीं बल्कि विवशता है।''[2] इस कथन से स्पष्ट होता है कि रचना प्रक्रिया के दौरान अकेला होना जरूरी है। अपने प्रत्येक कृति को सशक्त बनाने में वे सिद्धहस्त हैं। अपनी साहित्य सृजना से उन्होंने जीवन के यथार्थ को उद्घाटित किया और हिंदी साहित्य जगत् को एक नई दिशा प्रदान करने में वे सफल सिद्ध हो गये हैं।

---

1. डॉ. धनंजय वर्मा – आज की हिंदी कहानी, पृष्ठ – 66
2. जयदेव तनेजा – समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, पृष्ठ – 163

सुरेंद्र वर्मा लिखित उपन्यासों को विषय की कसौटी पर परखते हुए यह ज्ञात होता है कि उनके उपन्यासों के विषयों में विविधता है। उनके प्रत्येक उपन्यास की अपनी एक अलग पहचान है। वे अपने उपन्यासों के माध्यम से महानगरीय जीवन का चित्र पाठकों के सामने खड़ा करते हैं। उनमें कृत्रिमता की कहीं कोई झलक दिखाई नहीं देती है। ये विषय हर एक की जिंदगी से कहीं न कहीं और किसी न किसी रूप से जुड़े हुए होते हैं। उनके द्वारा लिखित विवेच्य उपन्यासों का विषयगत विवेचन निम्न प्रकार से है –

2.1 अंधेरे से परे (सन् 1980) :

'अंधेरे से परे' प्रकाशन क्रम के अनुसार वर्मा जी का पहला उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली द्वारा सन् 1980 में हुआ। एक समर्थ रचनाकार का अत्यंत सशक्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास आज की मजबूर भागती-हाँफती जिंदगीयों के आस-पास का बहुआयामी कथानक, उसकी तेज-टटकी बेलौस भाषा और उसका 'शिल्पहीन' शिल्प और कुल मिलाकर पूरे उपन्यास की बहुत भीतर तक बजती हुई गूँज दिखाई देती है।

'अंधेरे से परे' उपन्यास में सुरेंद्र वर्मा जी ने दिल्ली जैसे महानगरीय जीवन की भागदौड़, पारिवारिक कलह, नारी की विवशता, आर्थिक मजबूरी, अतृप्त काम वासना, पति के बंधन से मुक्ति, अपनी मर्जी के अनुसार विवाह, अकेलापन, पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करती नारी, नारी की स्वतंत्रता के खिलाफ पुरुषों की प्रवृत्ति, अवैध यौन संबंध, एडवर्टायजिंग, नौकरीपेशा नारी, बच्चों की घुसपैठ, नारी की मुक्ति तथा अधिकार आदि विषयों का विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत है।

आदमी के जीवन में कई बार उतार-चढ़ाव आते हैं जहाँ पर उसे अकेलेपन तथा अपमान का सामना करना पड़ता है। उपन्यास के शुरू से अंत तक गुल्लू कहानी बताता जाता है। गुल्लू कुंठित विचारोंवाला युवक है। यह उपन्यास वर्णनात्मक और डायरी शैली में लिखा है। गुल्लू सुबह सात के बजाय आठ बजे

उठता है तो उसे खुशी होती है कि दिनचर्या में एक घंटा काटने का संकट मिट गया। हर दिन ऐसा होता रहे तो कितना अच्छा होगा। बाहर आने पर सभी ओर भागदौड़ दिखायी देती है। सभी का कोई न कोई लक्ष्य होता है गुल्लू कहता है - ''मेरा क्या गंतव्य है? मेरा क्या उद्देश्य है? मुझे कहाँ पहुँचना है? देर हो जाने पर मेरा क्या हर्ज होगा? समय से पहुँचने पर मुझे क्या लाभ होगा?''[1] अत: स्पष्ट है कि जीवन की ओर देखने की दृष्टि निराशाजनक है। महामहिम डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम जी का मानना सही है कि हमारा भारत देश 2020 तक महासत्ताक बनेंगा लेकिन उनका यह ख्वाब कैसे पूरे होगा ? क्योंकि एक तरफ हमारी युवा पीढ़ी सक्रिय है तो दूसरी तरफ निराश कुंठित भी। युवा पीढ़ी के इस मनस्थिती में परिवर्तन होना जरुरी है।

इस उपन्यास के नायक का नाम जित्तन है जिसकी जीवन के प्रति देखने की दृष्टि बिल्कुल निराशाजनक है। उसके जीवन में एकांत होने के कारण उदासीनता, परिवार में कलह होने के कारण परिवार के प्रति स्नेह से ज्यादा कटुता या दूरावा दिखाई देता है। परिणामत: उसे अपना जीवन अंधेरे से भी परे लगने लगता है। जित्तन एक बड़ी कंपनी में असिस्टंट मैनेजर की नौकरी करता था लेकिन रिश्वत लेने के जुर्म में सस्पेंड हो गया हैं। सस्पेंड होकर एक साल बीत गया था, इसी बीच बचे-बचाये सारे रुपये खर्च हो गये थे। लतिका के पिताजी ने उन्हें घर-घर जाकर स्टेनलेस स्टील के बर्तनों का ऑर्डर लेने का काम चार सौ रूपये तनख्वाह के हिसाब से दिया था। बिंदो कहती हैं - ''हमें तो लतिका के डैडी का अहसान मानना चाहिए, वरना तुम्हारी जो हालत है उसमें कोई ऐसी नौकरी भी नहीं देगा।''[2] अत: स्पष्ट है कि जित्तन पर जो इल्जाम लगा है इसे देखकर उसे कोई नौकरी नहीं देगा। बिंदो के खातिर यह नौकरी मिल गयी है। लेकिन यह काम करने की जित्तन की इच्छा नहीं थी। कहता है मेरे जैसे आदमी के लिए कितनी जलालत का काम है। बिंदो की इस चिकचिकसे बचने के लिए जित्तन बिंदो को कार्यालय जाने देता है और सब सामान लेकर आपने मित्र मुकुंद के घर जाता है। गुल्लू उसे घर लाने जाता है तब जित्तन कहता है कि ''क्या मैं दीवार पर चिपका वह इश्तहार हूँ, जिसे कोई भी ऐरा-गैरा

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे, पृष्ठ - 26
2. वही, पृष्ठ - 12

नत्थू-खैरा नोच कर फेंक सकता है।''[1] इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य एक वस्तु नहीं है जब चाहे इस्तेमाल करे जब चाहे उसे फेंक दें। जित्तन की नौकरी छूट जाने के कारण आर्थिक मजबूरी का सामना बिंदो को करना पड़ता है।

हर एक के जीवन में बचपन का एक मोड़ आवश्यक होता है जहाँ ममता, संस्कार, खेलना-कूदना, मौज-मस्ती करना, स्नेह, किसी का दबाव नहीं जैसे - उन्मुक्त जीवन हो लेकिन प्रस्तुत उपन्यास के सोमू का जीवन इसी प्रकार का नहीं हैं। उसे बचपन से माँ-बाप का प्यार नहीं मिलता है। जित्तन छोटा था। ''उस वक्त माँ मुझे बहुत प्यार करती थी। दुख के लमहों में और भी ज्यादा। जब भी मैं बाहर से मार खाकर आता, दौड़ में पीछे छूट जाता या टैस्ट में नंबर कम पाता तो माँ हमेशा अतिरिक्त प्यार से कमी पूरी कर देती। कभी-कभी मुझे लगता था कि वो ऐसे मौकों की ही तलाश में रहती है। मेरी परवरिश ही इस तरह हुई थी कि मैं असफल बनूं।''[2] जित्तन को लगता है उस वक्त माँ ने मुझे अच्छे संस्कार दिए होते तो अब इस प्रकार की मजबूरी का सामना न करना पड़ता। यदि समय-समय पर डाँटती तो आज ये दिन न देखने पड़ते। जब वह खिडकी के पर्दे का किनारा समेट कर बाहर देखता है तब उसे धूमिल आलोक ही दिया देता है। कमरे में अंधेरा और बाहर वर्षा के बावजूद गहरा सन्नाटा जिससे लगता था कि निर्जन जहाज में आधी रात की ठोस कालिमा और निस्तब्ध के बीच सूने समुद्र में फँस गया है। जित्तन में आत्मविश्वास की कमी है।

बिंदो चाहती है हमें आशा और उत्साह के साथ जीना है। यह बताते समय वह भी दुखी थी। यदि दृढ़ आत्मविश्वास मनुष्य के पास हो तो वह अंदर और बाहर से मजबूत बनाकर व्यक्तित्व को बदल देता है। केवल अर्थाभाव कई तरह की ग्रंथियों को जन्म दे सकता है। अपनी असफलता के कारण जित्तन बाहर की दुनिया में झिझक और हीनता महसूस करता है। उसे लगता है कही एकांत में जा छिपू। मैं बिल्कुल अकेला हूँ। उसके हर कार्य में बिंदो का नकार महसूस होता हैं। जित्तन के लिए सन्, महीना, दिन, तारीख, इन सबका उसके लिए कोई मूल्य नहीं। घड़ी और कैलेंडर अर्थहीन थे। समय के अनंत विस्तार में तीव्र स्वच्छंद प्रवाह में वह अपने को

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे, पृष्ठ - 21
2. वही, पृष्ठ - 31

बहता हुआ पाता है। बिंदो, माँ, गुल्लू ये लोग अपनी-अपनी व्यस्तताओं के कारण घर से बाहर निकलते हुए देखता है तो मन में उदासी छा जाती थी। वह जीना नहीं चाहता बल्कि मरना चाहता है। उसे अपने आप में हिम्मत की कमी महसूस होती है। वह अपने जीवन को निरर्थक मानता है। जित्तन बचपन की आदतों के कारण ही उसी तरह का बर्ताव करने के लिए मजबूर होता है। "पुरानी आदत की वजह से कभी-कभी अब भी मुझमें वह चाह जाग उठती है।"[1] जित्तन करुणा भरे स्वर में कहता है। कहना उचित होगा कि बचपन की जो आदतें होती हैं उसका असर आगे की जिंदगी पर थोडी-बहुत मात्रा में क्यों न हो लेकिन आवश्यक होता है। जित्तन के स्कूल से एक चिट्ठी आती है। उस लिफाफे में इस तरह विचार था की - ". . . अंधेरे का एक रंग और खुशबू होती है। इन्हें हर एक देख नहीं सकता और महसूस भी नहीं कर सकता। इसके लिए अकेलेपन का अहसास बहुत जरूरी है।"[2] कहना आवश्यक नहीं है कि उस अंधेरे का अनुभव करनेवालों को ही पता चलेगा कि अंधेरा कैसा होता है।

गुलशन का पाँच सौ रुपये मासिक तनख्वाह पर 'आकाशदीप' एडवर्टायजिंग कंपनी में चयन होता है। गुल्लू इस कंपनी में इंटरव्यू देने के लिए जाता है तब मधु से मुलाकात हो जाती है। मधु 'आकाशदीप' कंपनी में नौकरी करती है। मधु अपने पति के साथ खुश नहीं है। मधु और अतृत्त काम वासना को तृप्त करने के लिए अपने ही कंपनी के गुल्लू का चयन करती है। पति की एक नहीं सुनती जब रोहित और मधु ड्राइंग रूम में जाते हैं तब मधु गुल्लू का हाथ पकड़कर दूसरे कमरे में ले जाती है। गुलशन और रोहित की पत्नी मधु के बीच अवैध संबंध है। मधु का एक पल भी गुलशन के बिना नहीं कटता। उसे वास्तव में एक बच्ची भी है - नीरू। फिर भी रोहित से कहीं अधिक उसका मन गुलशन में रमता है। वह कहती है - "अपने संबंधों को लेकर अब कुछ फैसला कर लेना चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है, मैं बिल्कुल निश्चिंत हूँ कि तुम्हारे बिना अब . . . ."[3] अत: स्पष्ट होता है कि मधु अपने पति रोहित से ज्यादा गुल्लू से प्यार करने लगी है। जब नारी की काम तृप्ति पति से पूरी नहीं होती है तब वह गैरमार्ग का अवलंब कर अपनी यौन तृप्ति की प्यास बुझाती है।

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे, पृष्ठ - 31
2. वही, पृष्ठ - 33
3. वही, पृष्ठ - 144

बिंदो भी उसी तरह की नारी है। जित्तन की नौकरी चले जाने से बिंदो शरीर विक्रय में रम जाती है। बिंदो ममा से कहती है - ''मैं कुछ नहीं कर सकती। मैं विवश हूँ। मैं अपनी भावनाओं का कुछ नहीं कर सकती। माँ पूछती है 'जित्तन को पता है?' . . . 'अभी नहीं।' . . . 'मुझे क्या है।' 'मुझे उस आदमी से ऐसी वितृष्णा हो गई है कि . . .'।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बिंदो अन्य पुरुष से संबंध रखना पसंद करती है। बिंदो नौकरी करती है दूसरी ओर जित्तन उदास, संत्रास, कुंठित होकर घर पर रहता है। बिंदो को अर्थाभाव का सामना करना पड़ता है। वह पति की बात सुनती नहीं है। बिंदो घर आने पर भी पैकेट से सिगरेट निकालकर मुँह में दबाती है और आँखें बंद कर धीरे-धीरे धुआँ छोड़ती है और वह भी व्हिस्की की बहुत हल्की गंध के साथ। नींद में भी उसे आँखों के सामने उसके प्रेम के चित्र दिखायी देते हैं। जित्तन हमेशा अपने मित्र मुकुंद के यहाँ रहना पसंद करता है। भाई गुलशन को भी पता है कि बिंदो को अब मजबूर होना पड़ा है। गुलशन उसे रोकना चाहता है। बिंदो अपने दोस्त के साथ मौज-मस्ती करती है। गुलशन पूछता है कि ''यह कौन था? 'मेरा सबसे नजदीकी दोस्त।' . . . 'आ कहाँ से रही हो?' . . . 'होटल डिप्लोमैट के बार से।' ... 'तुम कर रही हो, वो ठीक है?' ... 'मेरे लिए बेशक'...''[2] इस तरह बिंदो हद से आगे बढ़ी है और कहती है कि बर्दाश्त तुमने मुझे किया है या मैंने तुम्हें? रोज की इस अनबन से परिवार में बिखराव आ जाता है। सोमू का रोना भी बिंदो बर्दाश्त नहीं कर पाती है। परिणामत: माँ-बाप के झगड़े की सजा बच्चे को अनायास ही मिलती है। सोमू जित्तन को चाहता है। लेकिन बिंदो को अच्छा नहीं लगता। मैं सोमू से प्यार करती हूँ, तो कुछ उम्मीद भी रख सकती हूँ। बिंदो का कहना है सोमू बाप को भूला दे।

जिस तरह बिंदो की माँ अपने पति और बच्चे से प्यार नहीं करती थी ठीक उसी का अनुकरण बेटी बिंदो करती है। माँ को बिंदो का इस तरह बर्ताव ठीक नहीं लगता। जब बिंदो अपने माँ से कहती है कि - तुम्हारे और पापा के बीच तनाव मैंने देखे है, तब उसकी माँ उसे कहती है उससे तुलना करना बेकार है, क्योंकि तुम्हारे

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे. पृष्ठ - 102-103
2. वही, पृष्ठ - 147

पापा कम-से-कम अपने खुद के घर में रहते थे। बिंदो की माँ बिंदो को समझाने का भरकस प्रयास करती है। जिस तरह मेरी अवस्था हो गयी है उसी तरह तुम्हारी भी न हो, लेकिन बिंदो मानने के लिए तैयार नहीं है। दोनों का वादविवाद चलता रहता है। माँ कहती हैं कि, ''सोमू अभी कच्ची उम्र में है। ... 'क्यों? तुम्हारे लिए गुल्लू नहीं था?' ...'तुम भावनात्मक रूप से सोमू पर बहुत निर्भर हो।' ... 'तुम नहीं थी?' ... 'तुम पापा के प्रति फेथफूल रही हो?' ... थोडे विराम से ... 'नहीं'।''[1] इस कथन से स्पष्ट होता है कि बिंदो को बेटे सोमू और पति जित्तन के प्रति लगाव नहीं है। बिंदो पर बचपन से इस तरह के संस्कार हो गए हैं जो उनके माँ के द्वारा किए हैं, उसका अवलंब वह कर रही है। बचपन से बच्चों के लिए अच्छे वातावरण की आवश्यकता होती है। अगर माँ-बाप चोरी करते हैं तो बच्चा भी उसी का अवलंब कर बड़ा डकैती बन जाएगा। इसीलिए घर का माहौल अच्छा होना जरूरी है।

गुलशन बाहर से आता है तब उसे शांतता हररोज से ज्यादा महसूस होती है। गुल्लू जब सोचते हुए अंदर आता है तब सभी ओर शांतता फैली हुई नजर आती है। जित्तन कुर्सी पर उदास बैठे थे। यह उदासी जुगनू मर जाने से फैली थी। जित्तन को चिंता लगी थी कि सोमू इसे किस तरह से लेगा। जित्तन को जुगनू की कमी महसूस हो रही है । जित्तन को बेसिन के नीचे गुलाबी पंखुरी जैसी जीभ चुभलाकर जुगनू दूध पीती सी नजर आती हैं। इतने में सोमू आता है और 'जुग्गी ...' करके पुकारता है लेकिन जुग्गी उसे नजर नहीं आती। जित्तन सोमू को समझाते हुए कहता है - ''दुनिया में कुछ भी हमेशा नहीं रहता। सब कुछ बदलता, टूटता, बिखरता रहता है।''[2] अत: स्पष्ट है कि जुगनू की मृत्यु हो चुकी थी। उस पर विचार करना ठीक नहीं है। सोमू के चेहरे पर तनाव का भाव स्पष्ट दिख रहा था। पिताजी सोमू को सुनाते है कि ''तुमने अपनी किताब में गौतम बुद्ध वाली स्टोरी पढ़ी है। जो भी दुनिया में पैदा होता है, एक दिन उसकी साँस भी टूटती है। क्या जुगनू मर गई?''[3] इससे स्पष्ट होता है कि दु:ख तो सभी को बारी-बारी से आता है लेकिन उसमें से हमें सँवरना होगा। वही दु:ख मन में लेकर नहीं बैठना चाहिए। सोमू के चेहरे पर

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे, पृष्ठ - 103-104
2. वही, पृष्ठ - 140
3. वही

अकेलेपन की तीखी अनुभूति दिखाई देती है। उसके चेहरे पर वयस्कों के जैसा सच्चाई से साक्षात्कार का दृढ़ संकल्प उभर आता हैं। वह नन्हा-सा जीव जो उसके आसपास मंडराता था, उसके संकेतों पर चलता था। उसके दुरूह एकांत का संगी भी था अब वह निस्पंद पड़ा है।

नलिनी अट्ठाईस साल की युवती है । उसकी शादी अभी तक नहीं हुई है। गुलशन के साथ रोहतक के पुराने सीलन भरे कमरे में अपना कुँआरापन तोड़ देती है। कभी गुलशन के साथ कभी राजवंश के साथ बेहिचक भटकती है। नलिनी इतवार के दिन गुल्लू को फोन करके बुला लेती है। गुलाब बंदर को अपने मन की बातें कहती हैं। नलिनी ने स्मित हास्य करते हुए गुल्लू की ओर देखा, जिसमें उपलब्धि की चमक थी। पर्स से लिफाफा निकालते हुए कहा, 'कैसे हो गुलाब?' वह अपने 'नातजुर्बेकारी' से तंग आ चुकी है, जिंदगी के उस पैटर्न पर आ चुकी है कि जिसमें क्या कुछ नहीं होता है। नलिनी सही आदमी के इंतजार में है जो कभी आएगा भी या नहीं आएगा उसका पता उसे भी नहीं हैं। फिर भी उसे उसकी आशा है। गुल्लू को कॉफी पीने के लिए ले जाती है। नलिनी का बातें करने का ढंग कुछ अजीब लगता था। नलिनी गुल्लू पर टिप्पणी करते हुए बंदर गुलाब से कहती है, ''नलिनी ने गुलाब के सामने लिफाफा उल्टा करके हिला दिया, बस खेल खतम, पैसा हजम।''[1] अत: स्पष्ट है कि नलिनी यह सब बातें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष गुल्लू को पटाने के लिए कह रही थी।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना सही होंगा कि 'अंधेरे से परे'में चित्रित अधिकतर नारी पात्र शीला, बिंदो, मधु, नलिनी, नलिनी की चचेरी बहन अतृप्त काम वासना की शिकार हैं। जित्तन की नौकरी चली जाना और अर्थाभाव की मजबूरी का बहाना बनाकर पराये मर्द से संबंध रखकर उसकी वितृष्णा बढ़ना तथा रोहित जैसा पति होकर और नीरू जैसी संतान होने पर भी मधु का गुलशन से संबंध रखना, नलिनी का टेलिफोन करके राजवंश को बुलाना ये सारी घटनाएँ नारी की अतृप्त काम वासना को स्पष्ट करती है। बिंदो की जित्तन से बात बढ़ना, मधु का गुलशन के बिना न रह जाना,

---

1. सुरेंद्र वर्मा - अंधेरे से परे, पृष्ठ - 165

नलिनी का गुलशन के द्वारा कुँआरापन तोड़ देना, कभी गुलशन के साथ तो कभी राजवंश के साथ बेझिझक भटकना नारी की आजादी का ही सूचक है। बच्चों को माँ-बाप का प्यार न मिलने पर उनमें अकेलापन, उदासी, घुटन की प्रवृत्ति बढती हैं। जित्तन की नौकरी चली जाने के कारण उसके घर में कुंठित विचार पनपने लगते हैं जिसे वर्मा जी ने प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की बिंदो खुदगर्ज है। सोमू का लाड प्यार नहीं करती फिर भी वह यह दिखाती है कि पापा से ज्यादा या कई अधिक प्यार करती हूँ फिर भी इसका बूरा परिणाम अबोध बच्चे पर होता है। अगर गाडी के दो पहिए समांतर, मजबूत हो तो गाडी चलेगी, वैसा ही दांपत्य जीवन का है अगर पति-पत्नी में एक-दूसरे को समझ लेने की प्रवृत्ति हो तो संसाररूपी गाड़ी चलेगी इसमें दो राय नहीं। पति-पत्नी के झगड़े, तान-तनाव में बेचारे बच्चों की कैसी घुसपैठ होती है 'अंधेरे से परे' इस उपन्यास के बारे में कहना उचित होगा कि अगर हम तन-मन से उजियारे के बारें में सोचेंगे तो हमारे जीवन में प्रकाश छाँ जायेगा। हमारे देह यह मन में अंधेरा ही कुट-कुट कर भरा हुआ है तो प्रकाश के बारे में कुछ नहीं सोच पायेंगे। आज के युवक को प्रकाश भी अंधेरे से उपर लगने लगता हैं तो अंधेरें में प्रकाश देखनी की क्या खाक सोचेंगे। इसका मार्मिक चित्रण वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में किया है।

2.2 मुझे चाँद चाहिए (सन् 1993) :

'मुझे चाँद चाहिए' प्रकाशन क्रम के अनुसार दूसरा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन 'राधाकृष्ण प्रकाशन' दिल्ली द्वारा से सन् 1993 में हुआ हैं। वैचारिक दृष्टि से इस बृहत् उपन्यास को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। हिंदी साहित्य जगत् में उसे इतनी ख्याति मिली कि एक ही साल में दो-दो आवृत्तियाँ निकालनी पड़ी है। इसलिए हिंदी उपन्यास साहित्य क्षेत्र में सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए', 'मील का पत्थर' माना जाता है।

वर्मा जी ने प्रस्तुत उपन्यास में कलाकारों की महत्त्वाकांक्षा, कला के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, अंतर्विरोध तथा व्यावसायिकता के कारण कला के अवमूल्यन

और कला का चाँद की प्राप्ति हेतु किए जानेवाले संघर्ष में स्वयं को मिटा देने तक की आकांक्षा आदि बातों को बड़े प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर कहते हैं - ''ही कादंबरी मुख्यत: एका नाट्यगुणसंपन्न युवतीच्या छोट्याशा कसब्यातील अतिसामान्य मध्यमवर्गीय जीवनापासून शीर्षस्थानावर पोहचलेल्या अभिनेत्रीपर्यंतची जीवनयात्रा, त्यातील यशाच्या पायऱ्यांबरोबर मानसिक ताणतणावाचं चित्र प्रस्तुत करते आणि त्याचबरोबर या सर्व यात्रेतील तिच्या सुख-दु:खासह रंगमंच आणि फिल्मी दुनिया यांची प्रत्ययकारी पार्श्वभूमी रंगवते.''[1] (यह उपन्यास महत्त्वाकांक्षी नाट्यगुणसंपन्न युवती के कस्बों और वहाँ के मध्यवित्तीय परिवारों से शीर्षस्थान पर पहुँचने वाले फिल्मी अभिनेत्री की जीवनयात्रा, यश के साथ ही साथ मानसिक तनाव का चित्र प्रस्तुत कर उस यात्रा में सुख-दु:ख के साथ रंगमंच और फिल्मी दुनिया का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करती है।) उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उपन्यास की कथा कलाकारों के जीवन पर आधारित है। इसमें सभी जिस चाँद को पाना चाहते हैं वह है - अभिनय कला।

प्रस्तुत उपन्यास के कथा-संसार में कलाकार के संघर्ष के साथ-साथ स्त्री के संघर्ष की कथा तथा उनको गहरे पीड़ा-बोध, संजीदगी और कलात्मक संयम आदि दृष्टिगोचर होता है। साथ ही साथ प्रस्तुत उपन्यास शाहजहाँपुर - दिल्ली - बंबई के कस्बाई महानगरीय बोध को उद्घाटित करता है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में - '' 'मुझे चाँद चाहिए' वर्षा वशिष्ठ के औदात्य और उन्नयन का आख्यान है जो परंपराओं, वर्जनाओं और पुरुष की बैसाखियों को झटककर अपनी स्वतंत्रता स्थापित करनेवाली संघर्षशील आधुनिक स्त्री का मिथ रचती है।''[2] अत: स्पष्ट है कि आज की नारी अपने हक़ और कर्तव्यों के प्रति दक्ष हो गयी हैं। इस उपन्यास में हिंदी पाठक को पहली बार रंगमंच और सिने-संसार का विश्वसनीय, समृद्ध और संवेदना भरा चित्र देखने तथा अनुभव करने को मिलता है।

'चाँद' चिरकाल से साहित्य में विविध भावों-विचारों की अभिव्यक्ति

---

1. चंद्रकांत बांदिवडेकर - देशी वाण, पृष्ठ - 450
2. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2003, पृष्ठ - 113

का माध्यम रहा है। सुरेंद्र वर्मा ने अपने नये, बृहदाकार एवं महत्त्वाकांक्षी उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' में 'चाँद' के इतने बहुआयामी एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोग इतनी खुबसूरती से किये हैं कि सभी अंग-उपादान एवं दृष्टिकोण इसकी चाँदनी की छटा से आलोकित हो उठते हैं। यह प्रयोग अपनी प्रतीकात्मकता के साथ-साथ भी कलात्मकता और गहन वैचारिकता से संवलित भी है।

उपन्यास का शीर्षक 'मुझे चाँद चाहिए' कामू के नाटक 'कालिगुला' से लिया गया है, जिसका नायक कालिगुला (और उसके चरित्र को निभानेवाला हर्षवर्धन भी) कहता है कि 'होलिकॉन, मैं सिर्फ चाँद चाहता हूँ।' चाँद की यह कामना अप्राप्य आकांक्षा का प्रतीक है। यह अनायास ही नहीं है कि सुरेंद्र वर्मा ने उपन्यास के समर्पण पृष्ठ पर आरंभ में ही कालिगुला का यह संवाद उद्धृत किया है जो उनकी लेखकीय लालसा (और उनके नायक हर्ष की नियति) व्यंजित करता है।

संमोहित कर देनेवाले शीर्षक के बाद उपन्यास के समर्पण पृष्ठ पर 'कालिगुला' के उद्धरण पर नजर पड़ती है - ''अचानक मुझमें असंभव के लिए आकांक्षा जागी। अपना यह संसार काफी असहनीय है, इसलिए मुझे चंद्रमा या खुशी चाहिए - कुछ ऐसा, जो वस्तुत: पागलपन-सा जान पड़े।''[1] अचानक स्मृतियों में बाल-गोपाल का चित्र उभरकर फैलने लगता है। रोहिणी अग्रवाल ठीक ही लिखती हैं - ''चाँद खिलौना लेने का हठ। कच्चा बालपन हो या रोमानी युवा मन किसे नहीं चाँद चाहिए? एक सनातन आकांक्षा! और परिणति...? थाली के निर्मल पारदर्शी जल में कैद चाँद के अक्स पर बलिहारी जाती मुग्धताएँ।''[2] अत: स्पष्ट होता है कि सभी की अभिलाषा चाँद को छुने की हैं।

नायिका 'वर्षा वशिष्ठ' का बचपन से ही होनावाला सब कुछ बर्ताव उसके पूरे परिवार को पागलपन सा लगता है - चाहे वह दसवीं में पढ़ते हुए यशोदा शर्मा से 'वर्षा वशिष्ठ' का नाम परिवर्तन हो, चाहे घर के कार्य के साथ ट्यूशन - नौकरी करनेवाली शर्मा परिवार की सात पीढ़ियों में वह पहली लड़की हो अथवा

---

1. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, मुखपृष्ठ
2. सं. प्रभाकर श्रोत्रिय - नया ज्ञानोदय, दिसंबर 2003, पृष्ठ - 114

शादी-ब्याह करके घर बसाने के बदले नाटक करने का दीवानापन हो। इसी तरह आगे चलकर फिल्मों में सफल बन जाने के बाद बँगले के बदले फ्लैट में रहना, छोटे बजट की सार्थक फिल्मों तथा नाटकों में समय गँवाना आदि अलगपन दिखानेवाली बातें परिवार वालों को पसंद नहीं है। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के शब्दों में - ''स्त्री पर पड़ी पुरुष वर्जनामूलकता को खत्म करना भी जरूरी मुद्दा है, जो पूरी हिम्मत व साफ सोच-समझ के साथ वर्षा वशिष्ठ करती है। बचपन से लेकर अंत तक स्त्री होने के नाते करणीय-अकरणीय के सभी पारस्परिक विधि निषेधों को तोड़ने के सफल प्रयत्न इसके प्रमाण हैं।''[1] अत: स्पष्ट होता है कि वर्षा पुरुष सत्ताक समाज की वर्जना को तोड़कर अपने को सर्वश्रेष्ठ साबित कर दिखाती है। इतना ही नहीं प्रेमी हर्ष के मर जाने के बाद अपने गर्भ में पलते उसके बच्चे की बिनब्याही माँ बनने का निर्णय भी स्वयं लेती है।

प्रस्तुत उपन्यास में अनेक परिस्थितिजन्य घटना, मूलत: सिलबिल केंद्रित है। वर्षा की शादी के बारें में रामसेवक सिंह कहते हैं - ''सिलबिल स्वयं में व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिये छटपटाते अस्तित्व का त्रासद आख्यान है। सिलबिल प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार की बेटी है जहाँ किसी तरह बेटी की शादी कराकर ही अपनी पगड़ी को सुरक्षित समझा जाता है।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि, प्रत्येक सजग और प्रयत्नशील व्यक्ति को 'स्व' की पहचान के लिए आवाज उठानी पड़ती है और यही आवाज सिलबिल उठाती है - माँ-बाप के दिये नाम का त्याग करके वह स्वयं अपना नाम बदल देती है। सिलबिल का मानना हैं कि माँ-बाप के संबंधों को नकारना नहीं चाहिए किंतु बात केवल अपने पसंद-नापसंद की है तो उसका अधिभार व्यक्ति को जन्म के साथ मिलना चाहिए। शर्मा जी ने घर आकर अपनी बेटी सिलबिल से पूछा - ''तुमने अपना नाम बदल लिया है ? ... 'तुम्हारे नाम में क्या खराबी है?' पिता ने कडवे स्वर में पूछा। ... मेरे क्लास में सात शर्मा हैं। ... और यशोदा? घिसा-पिटा दकियानूसी नाम। उन्होंने किया क्या था, सिवा क्रिश्न को पालने के?''[3] अत: स्पष्ट है वर्षा अधुनिक पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है। इसीलिए जो उसका मन चाहता है

---

1. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श, पृष्ठ - 121
2. सं. विजय कुमार देव - अक्षरा, अक्तूबर-दिसंबर 2000, पृष्ठ - 9
3. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 16-17

वह कर दिखाती है। धर्म और रूढ़िग्रस्त निम्नमध्यवर्गीय पिता की लड़की सिलबिल उर्फ यशोदा शर्मा उर्फ वर्षा वशिष्ठ अभिनय की कला के चाँद को इसलिए पाना चाहती है क्योंकि उसे पारंपरिक जीवन असह्य लगता है। वर्षा को परिवार की ओर से विरोध होने के कारण उसके मन में विद्रोह की भावना निर्माण होती है फिर भी सिलबिल अपने परिवार को कम नहीं चाहती। उसके दायित्व का एक सिरा निरंतर घर से जुड़ा है। बचपन में किसी भी अभाव पर आँसू न बहाकर शून्य में ताकने वाली सिलबिल के भीतर संचित आँसू सैलाब के उत्स बन गये हैं जिसकी पहचान सबसे पहले दिव्या कत्याल को होती है। मिस कत्याल वर्षा से कहती है - ''तुम्हारे अंदर जो ज्वार भरा है, उसे मुक्ति देने के लिए ढक्कन खोलने की जरूरत है।''[1] दिव्या के कथन से स्पष्ट होता है कि हमारे पास सबकुछ होता है लेकिन किसी कमी के कारण उसे हम प्रकट नहीं कर पाते, सही दिशा और जगह मिलने पर हम उसे प्रकट कर पाते हैं। जब उस शक्ति की पहचान सिलबिल को होती है तब वह अपने ध्येय तक पहुँचने के लिये तमाम अवरोध को पार करने के लिए प्रयत्नशील रहती है। अपनी प्राध्यापिका दिव्या की सहायता से वह कला से जुड़ती है। उसे घुट-घुट कर जीवन जीना पसंद नहीं हैं।

वर्षा को कला के मंच पर अपनी अतृप्त आकांक्षाएँ और इच्छाएँ पूरी होती हुई दिखाई देती है। इसलिए पहले तो वह अपने अभावग्रस्त और त्रासदीपूर्ण जीवन से निकलने के लिए नाटक को अपना आधार बनाती है परंतु धीरे-धीरे यह नाटक उसकी आदत और फिर कला के आनंद में बदल जाता है। वर्षा अभिनय की कला से भावात्मक स्तर पर इस कदर जुड़ जाती है कि नाटक के पात्र उसे अपने परिवार के सदस्य लगने लगते हैं। सौम्यमुद्रा की भूमिका करते हुए प्रसेनजित को अपने पिता के स्थान पर और स्वयं को सच की सौम्यदत्ता मानकर दृश्य की परिकल्पना करती है, जो इसप्रकार है -

''प्रसेनजित : (क्रोधित स्वर में) दुष्टे, आधी रात को तेल फूँक रही है।

---

1. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 28

सौम्या : (सहज स्वर में) नींद नहीं आ रही तात! तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी अपने ब्याह की चिंता सता रही है।

प्रसेनजित : (चिढ़ा हुआ) कल तुझे देखने कुशीनगर के लिपिक कुमार विक्रम आ रहे हैं।

सौम्या : (चौंक कर) वह तो लँगडे और काने है।''[1]

वर्षा को कला के इस अभिव्यक्ति से प्रेरणा मिलती है वह जीवन में होनेवाली परंपराओं और मान्यताओं को तोड़ने लगती है। वर्षा के पिता के शब्दों में ''इस लड़की (वर्षा) ने वंश के कितने कीर्तिमान तोड़ दिए ... मुझे इस लड़की के लच्छिन ठीक दिखायी नहीं देते। करोंदे की झाड़ी दोहद के बाद का खिला अशोक बनना चाहती है।''[2] अत: स्पष्ट है कि वर्षा के पिताजी को चिंता लगी है कि पास-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे।

कला के प्रति इसी दृढ़ निश्चय और अभिनय के चाँद को पाने की लालसा उसे जीवन और परिवार की प्रतिकूल स्थितियों से निकालकर एन.एस.डी. तक पहुँचा देती है। लेकिन यही वर्षा जब मुंबई पहुँचती है तो समझ जाती है कि अभिनय कला के प्रति शत-प्रतिशत निष्ठा से, जीवन की कामयाबी नहीं पाई जा सकती। वह कलात्मकता के साथ समझौता करके व्यावसायिक सिनेमा की सफल कलाकार और हॉलीवूड की सफल नायिका बन जाती है। चाँद को पाने के लिए वह अपने सगाई की भी परवाह नहीं करती। उसे यह भी मालूम है कि इस चाँद को पाने के लिए जीवन का कुछ हद तक उत्सर्ग करना पड़ता है। यदि वर्षा कला की अपेक्षा जीवन को अपनाती तो वह अभिनय के चाँद को कभी न पाती। अभिनय के चाँद के साथ-साथ एक और चाँद जुड़ जाता है वह हैं - हर्ष। अभिनय-प्रेम एवं हर्ष-प्रेम वर्षा वशिष्ठ की वे खुशियाँ या चाँद हैं, जिसके बिना 'कालिगुला' की तरह उसके लिए 'दुनिया काफी असहनीय' होती है। वह इन्हीं दोनों के लिए पूरे उपन्यास में जीती हुई नजर आती है। कलाकार के सफलता के बारे में शाम कश्यप कहते हैं ''वस्तुत: हर्ष और वर्षा की कलात्मक जीवन परिणति ही मिलकर कलाकार के संघर्ष और

---

1. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 31
2. वही, पृष्ठ - 34

आत्मसंघर्ष की लहूलुहान कहानी बन जाती है। . . . इन दो शिखरों के ध्रुवांत के बीच कसे हुए तारों की तरह से फैली हुई है हर्ष और वर्षा की त्रासदीय प्रेमकहानी।''[1]

वर्षा वशिष्ठ के साथ-साथ प्रस्तुत उपन्यास का प्रधान पात्र है हर्ष। हर्ष संपन्न परिवार के अफसर का बेटा है। एम्.ए. की शिक्षा अधूरी छोड़कर तथा कई-कई भौतिक संभावनाओं को ठुकरा कर सिर्फ अभिनय की खुशी पाना चाहता है - उसे सिर्फ अभिनय की कला का चाँद चाहिए। अथक परिश्रमों-प्रयत्नों के बाद अपनी मनचाही फिल्म 'मुक्ति' के शुभारंभ के दिन सेट पर जाते हुए वर्षा से हाथ मिलाकर हर्ष 'कालिगुला' का संवाद बोलता है - ''हेलीकॉन, मैं सिर्फ चाँद चाहता हूँ।''[2] स्पष्ट है कि 'मुक्ति' फिल्म चल नहीं पाती उस चाँद को चाहता है जो उसे नहीं मिलता क्योंकि अभिनय कला का वह स्वयं चाँद हैं। उसे फिल्म 'कंपन' की भूमिका के लिए अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका था। उसके अभिनय को लेकर एन.एस.डी. के निर्देशक एवं नाट्य-कलाओं के मास्टर डॉ.अटल टिप्पणी करते हैं - ''हर्ष का रोल को निभाने का थ्रस्ट मुझे ऑलीवियर की याद दिलाता है, उसके समृद्ध स्वर और डिक्शन में बर्टन की नफासत और चमक है। ब्रेंडो की तरह हर्ष का ग्राफ टेढ़ा-मेढ़ा नहीं जाता। . . . उसमें अपनी भूमिका से भी परे जाने का सामर्थ्य है। वह नि:संदेह आज के भारत का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता है।''[3] इस कथन से स्पष्ट होता है कि हर्ष सर्व गुणसंपन्न अभिनेता है और उसके साथ अनेक आकर्षक एवं संपन्न युवतियाँ जीवन संगिनी बनने के लिए लालायित थी।

नाट्यजगत् में शीर्ष का अभिनेता हर्ष फिल्म में असफल होता है क्योंकि उसमें व्यावसायिक दृष्टिकोण का अभाव है। जहाँ वर्षा अभिनय के स्तर को लेकर समझौते का रूख अख्तियार करती है वहाँ हर्ष समझौता नहीं करता। इसीलिए वह कुंठा, संत्रास बोध हीनभावना से ग्रस्त हो जाता है। इस अवसाद में डूबकर वह कोकीन का आदी हो जाता है। डॉ. मोहम्मद ढेरीवाला कहते हैं - ''सामान्य पृष्ठभूमि और परिवेशवाली निम्नमध्यवर्गीय वर्षा जहाँ इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाती है, वहाँ अपेक्षाकृत संपन्न पृष्ठभूमिवाला प्रतिभासंपन्न हर्ष असफलता की काली नियति का

---

1. सं. गोपाल राय - समीक्षा, अक्टूबर 1994, पृष्ठ - 7
2. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 421
3. वही, पृष्ठ - 541

शिकार होकर मायूसी के अँधेरों में गुम हो जाता है।''[1] अगर हमारे पास प्रबल इच्छाशक्ति हो तो हम सबकुछ पा सकते हैं। समय के बदलते सच से तालमेल न बिठा पाने के कारण समृद्ध परिवार का अभिनयनिष्ठ हर्ष आत्महत्या कर लेता है। उसके प्रेम में आकंठ डूबी वर्षा अपनी पहली और अप्रत्याशित प्रतिक्रिया में तो यही कहती है कि ''मेरे वास्ते चंद्रमा हमेशा के लिए बुझ गया।''[2] वह यह मानती भी है कि 'जगत् विसर्जन कोई समाधान नहीं।' वर्षा दिव्या से कहती है आत्महत्या दुर्बलों और कायरों का काम है। सच्चे और महान वे हैं जो अपनी असफलता के बावजूद जिंदा रहते हैं। वर्षा का जीवन की ओर देखने का नजरिया हर्ष के जीवन से भिन्न नहीं बल्कि एकदम विपरीत है।

वर्षा वशिष्ठ का यह कदम साहसिक है कि हर्ष के बच्चे की कुँवारी माँ बनना। लेकिन एक तरफ से वह परंपरा का वहन करती हुई नजर आती है। तो दुसरी ओर इसी संदर्भ में टिप्पणी करते हुए डॉ. शशिकला त्रिपाठी कहती हैं - ''लेखक परंपरापोषित मानसिकता का ही पक्षधर दिखायी देता है इसलिए कि उपन्यास में 'मातृत्व' को अहमियत दी गयी है।''[3] स्पष्ट हैं कि, उसका यह निर्णय आधुनिक विचारों के तहत नहीं बल्कि नारी भावुकता के तहत लिया गया निर्णय है। हर्ष से विवाह न होने पर भी वह मानों उसे अपना पति स्वीकार कर लेती है। हर्ष की बहन सुजाता वर्षा से कहती भी है कि तुम्हारे सामने सारी जिंदगी पड़ी है, तुम कानूनी तौर पर शादी कर इससे छुटकारा क्यों नहीं लेती? सुजाता उसे सहानुभूति से नहीं कहती बल्कि उसे और भडकाने के लिए कहती है। तब वर्षा इसकी बातों से तिलमिला हो उठती है और कहती है कि ''आपसे मदद माँगी किसने है? मैं जैसी दीन-हीन पैदा हुई थी, मेरा बच्चा वैसे पैदा नहीं होगा। वह अपनी माँ के घर में मुँह में चाँदी के चम्मच के साथ पैदा होगा, जैसा उसका बाप हुआ था। ... ऐसी ओछी बात तो चित्रनगरी में पैदा होने वालों के मन में आती है, आप तो दिल्ली के प्रतिष्ठित परिवार के लोग हैं।''[4] प्रस्तुत कथन से दृष्टिगोचर होता है कि वर्षा के निश्चय ही अपने बच्चे को जन्म देगी और उसका पालन-पोषण भी करेगी। वर्षा के जीवन-दर्शन और उसके

---

1. डॉ. मोहम्मद ढेरीवाला - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रुपों का चित्रण, पृष्ठ - 188
2. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 547
3. डॉ. शशिकला त्रिपाठी - उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, पृष्ठ - 59
4. सुरेंद्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, पृष्ठ - 555-556

भावात्मक संतुलन की तार्किक परिणति उपन्यास में इस रूप में प्रतिफलित है कि वह कलात्मक शिखरों के साथ ही व्यावसायिक ऊँचाईयों की बुलंदियाँ को छू पाने में भी सफल रहती है; लेकिन उसका जीवनरूपी चंद्रमा हमेशा के लिए बुझ जाता है। वर्षा गर्भ में पल रहे बच्चे को अपनी कलानिष्ठा के बाद का सबसे महत् मानवीय गठबंधन मानती है। यहाँ सुरेंद्र वर्मा नारी को उस ऊँचाई तक नहीं ले जा पाते जिस ऊँचाई तक वे ले जाना चाहते थे क्योंकि अगर वर्षा बच्चे को जन्म देकर दूसरा विवाह कर सकती थी। लेकिन सुरेंद्र वर्मा वैसा नहीं कर पाते। क्योंकि वे परंपरागत रूढ़ियों का निर्वाह करना चाहते है। इस पर प्रभा खेतान टिप्पणी करती हुए कहती हैं – ''बहुत अच्छा उपन्यास है। मगर उपन्यास का अंत पुरुष केंद्रित सोच और विज़न को अभिव्यक्त करता है। लेखक वर्षा को यश की जिस ऊँचाई तक ले जाता है, वहाँ से लौटकर हर्ष से उसका गर्भवती होना, मातृत्व की भावना का महिमामंडन है जो कि बड़ा फिल्मी है। उपन्यास में एक छुटा हुआ संदेश है, औरत चाहे जितनी ऊँचाई हासिल कर लें किंतु माँ बनना उसके जीवन की अंतिम सार्थकता है।''[1] अत: स्पष्ट है कि नारी कितनी भी ऊँचाई क्यों न हासिल कर ले लेकिन उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य मातृत्व बनने में ही होता है।

वर्षा का यह विद्रोह आम आदमी के वश की बात नहीं है। वर्षा माँ बन जाने के बाद सिद्धार्थ शादी का प्रस्ताव रखता है। शाहजहाँपुर में कॉलेज के कवि कमलेश, लखनऊ के मिठ्ठू, दिल्ली में हर्ष के बाद पहली फिल्म 'जलती-जमीन' करने के दौरान वर्षा के निकट आया निर्देशक सिद्धार्थ उसका चौथा प्रेमी है। वर्षा के जीवन में हर्ष की स्थिति जान लेने के बाद लगे सदमे से सिद्धार्थ आत्महत्या का प्रयास करता है। वर्षा की विवाह के संबंध में उसकी अभिन्न मित्र, गाइड दिव्या कहती है – 'बस एक इच्छा अधूरी रह गयी कि अनुपस्थित होने के पहले तुम्हें दुलहिन बनी देख लूँ।' इस पर वर्षा कहती है कि 'कोई इच्छा अधूरी रह जाये, तो जिंदगी में आस्था बनी रहती है।' इससे स्पष्ट होता है कि वर्षा शादी नहीं करना चाहती है और इससे भी अधिक साफ है कि वर्षा अपनी अनुभूतियों व उसके प्रतीकों के साथ अकेले जीना चाहती है।

---

1. डॉ. उषा कीर्ति राणावत – प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार, पृष्ठ – 202

भौतिक सफलता और कलात्मक लालसा से क्षत-विक्षत अनेक जीवंत और दिलचस्प पात्र प्रस्तुत उपन्यास में मौजूद हैं। वैसे तो यह समूचा उपन्यास ही जिस विलक्षण कौशल और अद्‌भूत सहजता के साथ लिखा गया है, जो सुरेंद्र वर्मा की कलात्मक क्षमता का परिचायक है। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के शब्दों में - "पूरे उपन्यास में वर्षा की संवेदनशीलता, व्यावहारिकता एवं प्रतिबद्‌धता का सुंदर समन्वय बड़े करीने से पिरोया गया है।"[1] ज्यादातर सूक्ष्म और कलात्मक चित्रांकन के साथ सटीक और सहज संवादों में गतिशील और जीवंत दृश्यांकन किया गया है। अत: घर के सभी लोगों का वर्षा की शादी के बारे में सोचना, वर्षा का शादी करने से इन्कार करना, पिता द्‌वारा वर्षा का कॉलेज बंद करने की धमकी देना, घर के काम की जिम्मेदारी वर्षा पर डालना, मिस दिव्या कत्याल का वर्षा के पिता को समझाना इन सारी बातों से वर्षा त्रस्त हो जाती है लेकिन फिर भी वह आखिर तक संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि 'मुझे चाँद चाहिए' वर्षा वशिष्ठ के औदात्य और उन्नयन का आख्यान है जो परंपराओं, वर्जनाओं और पुरुष की बैसाखियों को झटक कर, अपनी स्वतंत्रता स्थापित करनेवाली संघर्षशील नारी है। यह उपन्यास अभिनेत्री वर्षा वशिष्ठ की संघर्ष गाथा ही नहीं बल्कि प्रेमकथा भी है। इस कथा-संसार में कलाकार के संघर्ष के साथ-साथ स्त्री के संघर्ष की कथा भी कलात्मक ढंग से प्रस्तुत की गयी है। उसका चरित्र एक मध्यमवर्गीय रूढ़िवादी ब्राह्‌मण परिवार की लड़की यशोदा शर्मा से सिने-कलाकार वर्षा वशिष्ठ तक की यात्रा तथा स्त्री के संघर्ष और विद्रोह का असाधारण उदाहरण है। वह एक महत्त्वाकांक्षी लड़की है जो परंपरागत व्यवस्था तथा रूढ़ियों को ठुकराकर आधुनिक विचारों का समर्थन करती है। उसका संघर्ष जितना बाहरी और व्यवस्था विरोधी है उतना ही निजी और आंतरिक स्त्री के रूपांतरण की विश्वसनीय कहानी भी है। स्त्रियों के जीने के लिये परंपराग्रस्त समाज की अनचाही लादी मान्यताओं से परे हटकर अपने मार्ग को प्रशस्त करने के लिये प्रेम

---

1. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी - हिंदी उपन्यास समकालीन विमर्श, पृष्ठ - 125

तथा भावात्मक जीवन संघर्ष अपूर्व बल प्रदान करता है। 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा के जीवन में काँटें ही काँटे बिखरे हुए है। लेकिन वर्षा सचमुच काँटों को फुल मानकर अपनी इच्छा और आकांक्षारुपी चाँद को हासील करती है।

सुरेंद्र वर्मा जी ने अपने इस उपन्यास में वर्तमान जीवन और कला के विविध संदर्भों को कई-कई संभावित स्थितियों और दृष्टियों से चित्रित किया है। लेखक ने फिल्म उद्योग की सच्चाई कारणों की ओर भी संकेत किया है। कई बार कलाहीन एवं दृष्टिहीन निर्देशकों के कारण भी फिल्में पूरी नहीं बन पाती और जो बनती है वही भी फ्लॉप हो जाती है। आत्मान्वेषण और आत्मोपलब्धि की इस संकट यात्रा में वर्षा एक ओर अपने परिवार के तीखे विरोध से लहूलुहान होती है, तो दूसरी ओर आत्मसंशय, लोकोपवाद और अपनी रचनात्मक प्रतिभा को मांजने निखारनेवाली दुरूह, काली प्रक्रिया से क्षत-विक्षत पर उसकी कलात्मक आस्था उसे रक्तरंजित संघर्ष पथ पर आगे बढ़ाती है। इस उपन्यास में रंगमंच तथा फिल्मी दुनिया के कलाकारों के सुख-दु:ख की कहानी है। जाहिर है प्रस्तुत उपन्यास में महत्त्वाकांक्षी वर्षा वशिष्ठ के माध्यम से कस्बों, छोटे शहरों और वहाँ के मध्यवित्तीय परिवारों में आए बदलाव को रेखांकित किया गया है। शादी के पूर्व वह मातृत्व को स्वीकार करती है और बच्चा होने पर भी शादी करने से इन्कार कर देती है। उसे अपना ही नाम देती है। •

अंतत: कहना सही होगा कि सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास एक सफल एवं प्रशंसनीय उपन्यास है।

2.3 दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता (1998) :

सुरेंद्र वर्मा का 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' प्रकाशन क्रम के अनुसार तीसरा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का प्रकाशन 'राधाकृष्ण प्रकाशन' दिल्ली द्वारा सन् 1998 में प्रकाशित हुआ है।

महानगरों में कल-कारखाने खोले गए हैं। इसी कारण शहरों महानगरों में बाहरी लोगों की भीड़ होने लगी है। उपजीविका करने के लिए ग्रामीण लोग शहरों

की ओर दौड़ने लगे हैं। महानगर उद्योग-व्यवसायों के केंद्र बने हैं। औद्योगिकीकरण, यांत्रिकीकरण के कारण श्रमिकों की आवश्यकता महसूस हो रही हैं। परिणामत: श्रमिक लोग पैसा कमाने हेतु महानगरों की ओर दौड़ने लगे। महानगरीय लोग अर्थकेंद्रित बनने लगे, दुनिया भर के देशों के दूतावास महानगरों में बने, बड़े-बड़े नामांकित लोगों की व्यवस्था के लिए पंचतारांकित रेस्तराँओं का निर्माण हुआ, क्लबों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई, मनोरंजन की उपलब्धता के अनुरूप विविध प्रकार के कलाकारों का आगमन हुआ, कम श्रम में अधिक अमीर बनने के लिए महानगरों में स्मगलरों-गुंडों की संख्या बढ़ने लगी।

प्रस्तुत उपन्यास में ठीक इसी स्थितियों का जिक्र मिलता है। सुरेंद्र वर्मा ने इस उपन्यास में चारों ओर असंगति, संदेह, मूल्य-विघटन, तनाव, पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, भ्रष्टाचार, संस्कारों की टकराहट, स्वच्छंदी मुक्त यौन-संबंध, विवाहबाह्य संबंध, विवाहपूर्व अवैध यौन-संबंध, विवाह संबंध विच्छेद, बेकार युवा वर्ग का असंतोष, पुरुष वेश्या प्रवृत्ति का प्रचलन आदि तत्त्वों का चित्रण किया गया है।

आज की युवा पीढ़ी कस्बे या गाँवों से शहरों तथा महानगरों में स्थलांतरण करते दिखाई देते हैं। शहर जाने पर रोजगार उपलब्ध होगा ही इसकी कोई संभावना नहीं है। अत: युवाओं के सामने रोजगार की समस्या निर्माण हुई है। इस वजह से युवा वर्ग निराश हो गया है और कम समय में अधिक पैसा कमाने के पीछे पड़ गया है। इसी के परिणामस्वरूप पुरुष वेश्या प्रवृत्ति का प्रचलन बढ़ रहा है। कुँवरपालसिंह के मतानुसार - ''नई वेश्याएँ रूप के बाजार में जाकर तन को बेचने की अपेक्षा बड़े-बड़े होटलों, क्लबों, डाक-बंगलों, कोठियों, हिल-स्टेशनों आदि में जाकर सुशिक्षित नारियाँ रात के अंध:कार में रूप का सौदा करने लगी, दिन में सभ्य-सामान्य जीवन व्यतीत करने लगती हैं। इन्हें आधुनिक सभ्यता में कॉलगर्ल, सोसायटीगर्ल कहा जाने लगा। ये नारियाँ 'मॉडर्न एटीकेट' से पूर्ण परिचित होती रही। वेश्या वृत्ति के इस नए रूप के लिए आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था उत्तरदायी है।''[1] कहना आवश्यक नहीं

---

1. डॉ. कुँवरपाल सिंह - हिंदी उपन्यास : सामाजिक चेतना, पृष्ठ - 42

कि पूँजीवादी व्यवस्था के कारण समाज में वेश्यावृत्ति बढ़ गई है। समाज में आयी हुई उपभोक्तावादी संस्कृति के संबंध में चिंता व्यक्त करते हुए लेखक कहते हैं – ''उपभोक्ता समाज में जीने की एक ही शर्त है – अपनी किसी योग्यता को बाजार में बेच पाना छोटे बाजार में छोटी कीमत बड़े बाजार में ऊँची कीमत। ... चाहे गन्ने की तरह निचोड़ना ही क्यों न पड़े।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उपभोक्तावादी समाज में बाजार की समझ होना जरूरी है।

प्रस्तुत उपन्यास के युवक दिशाहीन होकर देह का व्यापार करके पैसा कमाने लगते हैं। ऐसे ही फैशन एवं शोषण की नई-नई प्रवृत्तियों का भी युवा जीवन पर परिणाम हुआ है। नील और भोला उत्साह, उमंग तथा साहस से परिपूर्ण होकर अपने वर्तमान तथा भविष्य को सुखमय एवं उन्नतिशील बनाने हेतु शहर जाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे दो युवकों की कहानी है जो एक हादसे के द्वारा एक दूसरे के करीब आये हैं और एक अच्छे दोस्त बने हैं। जिनके नाम है – नील और भोला। नील एक शिक्षित युवक है तो भोला अनपढ़ है। सुरक्षा और समृद्धि का सपना संजोए शिक्षित युवक नील और भोला किस तरह अमीर बनना चाहते हैं और भरपूर पैसा कमाना चाहते हैं, ठीक इसी स्थिति का जिक्र 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में मिलता है।

नील और भोला के जीवन का बहुत बड़ा लक्ष्य कम समय में अधिक धन प्राप्त करना है। आर्थिक स्वावलंबन के अभाव में वे नीचले स्तर तक जा पहुँचते हैं। इतनी विषम परिस्थितियों में युवकों का मानसिक संतुलन बना रहना मुश्किल होता है। तभी तो बेकारी के कारण भोला डाकू बनता है और नील 'पुरुष वेश्या'। नील और भोला पैसा कमाने हेतु बंबई महानगर में पहुँचते हैं। दोनों के भी पास निश्चित काम करने की कोई योजना नहीं थी। उद्देश्य सिर्फ इतना था कि पैसे कमाना, ''कोई निश्चित रूपरेखा उसके सामने नहीं थी। लक्ष्य सिर्फ इतना था – दो साल में पर्याप्त द्रव्य। बस इतना समझ में आ गया था कि जो भी काम वह करेगा, पारंपरिक नहीं होगा।''[2] स्पष्ट है कि नील और भोला पैसा कमाने हेतु महानगर में

---

1. सुरेंद्र वर्मा – दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, फ्लैप
2. वही, पृष्ठ – 14

आए थे। भोला नील से कहता है - ''मैं दो साल में एक लाख कमाने के लिए बंबई जा रहा हूँ।''[1] मुंबई महानगर में भोला को अंडरवर्ल्ड पनाह देता है तो नील मिसेज दस्तूर का शोध सहायक बनता है। अंडरवर्ल्ड भोला पर विश्वास बढ़ाता जाता है और भोला तरक्की करता जाता है। खूब रूपये कमाता है।

नील एम्.ए. तक पढ़ाई कर चुका है। एम्.ए. के बाद वह पीएच्.डी. करना चाहता है। अत: इसी सिलसिले में वह प्रो. शर्मा के घर आया जाया करता है, उनसे वह पीएच्.डी. के लिए मार्गदर्शन लेना चाहता है। प्रो. शर्मा भी नील को मार्गदर्शन करने के लिए हाँ कहते हैं। नील टिप्पणियाँ बनाने में लगा था। दरम्यान प्रो. शर्मा की बेटी किरण नील के सुगठित शरीर पर फिदा होती है और बिना हिचक यौन संबंधों को तैयार होती है। जवानी का जोश चढ़ा नील भी अपने आपको रोक नहीं पाता। परिणामस्वरूप किरण गर्भवती बनती है। अत: इस परिणाम की बहुत भारी कीमत नील को चुकानी पड़ती है। प्रो. शर्मा खुद नील को मार्गदर्शन करने की बात तो दूर की हैं। लेकिन कोई और भी नील को मदद न करने की पूरी व्यवस्था वे करते हैं। प्रो. शर्मा प्रोफेसर लाहिड़ी से कहते है - ''मैं दिल्ली से उसकी जड़े खोदकर मट्ठा डाल दूँगा और देश के किसी विश्वविद्यालय में दुबारा रोपने नहीं दूँगा।''[2] प्रो. शर्मा का यह कथन वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में चित्रित बुराइयों की दुहाई देता है। एम्.ए. तक उच्च शिक्षा प्राप्त नील प्रो. शर्मा की इन बातों से डर जाता है। वह प्रो. शर्मा से विरोध करने के बजाय शहर छोड़कर चला जाता है। एम्.ए. तक प्राप्त डिग्रियों का कोई महत्त्व नहीं रहा। नील अपने पर होनेवाले अन्याय का सामना नहीं कर पाता तब वह मुंबई आकर कम समय में ज्यादा रुपए कमाने के सपने देखता है।

नील मेहताब जी के घर में शोध-सहायक के रूप में रहता हैं। नील जो काम कर रहा है अगर उस काम का पता मेहताब जी को लगे तो वह तुरंत घर से बाहर निकाल देगी इसी डर से नील मेहताब जी से हमेशा झूठ बोलता है। अत: नील ब्लॉसम के साथ होटल में रात गुजारता है, जैसे सुरेंद वर्मा के शब्दों में - ''ब्लौसम ने उसे अपने गाडी से एक इमारत पहले उतार दिया था। उसने मेहताब जी को फोन कर

---

1. सुरेंद्र वर्मा - दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृष्ठ - 14
2. वही, पृष्ठ - 11

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

दिया कि पुस्तकालय में एक मित्र मिल गए हैं, लंच के लिए न आ पाए तो चलेगा?''[1] स्पष्ट है कि नील ने ब्लॉसम के साथ होटल में रात बिताई थी। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से कुमुद, करुणा, शिल्पा, कुंतलराव, यास्मीन, ब्लॉसम और पारूल आदि में आधुनिकता के दर्शन दिखाई देते हैं। ये नारियाँ यौन-तृप्ति के नये-नये आयामों की तलाश करती हैं। पूँजीपति समाज के पुरुष अपनी पत्नियों की यौन-तृष्टि न करने के कारण घर टूटने की चिंता से आक्रांत हैं। जयंत इसका अच्छा उदाहरण है। नवीन, नितिन, जयंत औद्योगिक पूँजीपति समाज के प्रतिनिधि पात्र है। इस उपन्यास की सभी नारियाँ परंपरागत चले आए हुए विवाह बंधनों को तोड़कर मुक्त जीवन जीना चाहती हैं। अमीर विवाहिताएँ अपने आलीशान घरों के सुसज्ज शय्याकक्षों में, फाइवस्टार होटलों के शानदार कमरों में सेक्स के लिए प्रशिक्षित नील को अंकशायिनी बनाती हैं। बड़े हाइरेट का मेहनताना भी देती हैं।

नौकरी की अपेक्षा से शहर में रुपये कमाने के लिए आया भोला कालाबाजार के विविध आयाम छोड़कर भैंचक्का हो जाता है। वह सोचता है - ''पैसे की शक्ति किसी भी व्यवस्था में सेंध लगा सकती है।''[2] वह धीरे-धीरे समझ रहा था। पुलिस के कामथ, कस्टम के डिसूजा, एक्साइज के रंगनाथन, कार्पोरेशन के कर्णिक, नार्कोटिक्स, कंट्रोल ब्यूरो के देसाई, सी.आई.डी. की क्राइम ब्रांच के घाटगे सबको देख लिया था। नये साल में सबके यहाँ उपहार पहुँचाने गया था - रंगीन टी.वी., वी.सी.आर., सिलाई मशीन, मोटार साइकिल, कमीज और सूट का कपड़ा, साडियाँ, स्कॉच की बोतलें। रुपयों के साथ-साथ बड़ी-बड़ी चीजें देकर एक-दूसरे को खुश किया जाता है। गुंडागर्दी करनेवाले लोगों को हमारी पुलिस यंत्रणा किस तरह सहायता करती है इसका चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। भोला तस्करी में फँसता है। पुलिस उसे पकड़ ले जाकर हवालात में बंद करती है लेकिन पुलिस को जब पता चलता है कि भोला मर्तुजा का आदमी है तब वे कहते हैं - ''क्या पागल आदमी है। पहले क्यों नहीं बोला।''[3] भोला को पुलिस छोड़ देती है। कानून के रक्षक एक गुंडे के सामने झुक जाते हैं। बार में नाचनेवाली लड़की शालू के साथ

---

1. सुरेंद्र वर्मा - दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृष्ठ - 75
2. वही, पृष्ठ - 68
3. वही, पृष्ठ - 178

भोला के प्रेम संबंध जुड़ जाते हैं और बाद में दोनों मिलकर अपना एक घर बसाते हैं। अत: नील ऐसे स्त्रियों के शरीर की प्यास बुझाने लगा जो अपनी जीवन शैली को लेकर आश्वस्त हैं। यास्मीन के बारे में नील सोचता है - ''हँसी में कहीं शिकन या कंपन नहीं था। वह निर्बंध और बेबाक थी। इस स्त्री के भीतर कोई गाँठे नहीं है।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अपने पति से यौन तृप्ति न होने वाली। यास्मीन एक अधेड़ उम्र की औरत होकर भी नील को ओवरटाइम देकर उससे यौन-तृप्ति कराती है। नील अखबार में विज्ञापन देकर अपने वेश्या व्यवसाय को बढ़ाना चाहता है। नील ने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के 'मीटिंग ग्राऊंड' शीर्षक के अंतर्गत अपना विज्ञापन दिया हैं -''कुशाग्र बुद्धि, संभाषण कुशल, सजीले युवक को युवती मित्र चाहिए। जिंदगी को बर्दाश्त के लायक बनाना हो तो आज ही संपर्क करें।''[2] और स्पष्ट है कि, कुशाग्र बुद्धि संभाषण कुशल तथा सजील युवक नील धन प्राप्ति के लिए जादा से जादा युवती मित्र के खोज में है।

नील प्रौढ़ कुँवारी कुमुद केशवानी से यौन संबंध स्थापित करके पुरुष वेश्या व्यवसाय की शुरूआत करता है। विधवा ब्लॉसम नील के यौन-संबंधों में पाँच सौ से ऊपर पारिश्रमिक देती है। यास्मीन एक अधेड़ उम्र की औरत होकर भी ओवरटाइम देकर नील से यौन-तृप्ति करती है। नील की भेंट चालीस वर्ष के ऊपर वाली औरत से होती है। उसे उसके गालों पर यौवन की ललक दिखाई देती है। नील कहता है - ''मैं आपका अकेलापन बाँट सकता हूँ? तुम्हारी समस्या क्या है? ... मैं आपको पूरे संतोष की गारंटी देता हूँ। मेरे रेट भी वाजिब हैं।''[3] इस औरत से नील धोखा खाता है। आगे चलकर नील का पारूल से यौन संबंध स्थापित होता है। पारूल मशहूर सोमपुरिया की बेटी थी। जिसका विवाह उसकी पसंदगी के खिलाफ जयंत से हुआ था। जयंत से उसकी यौन अतृप्ति होती है तब पारूल नील जैसे युवक से यौन संबंध रखती है। बदले में उसे पैसे और बंगला भी देती है। शिल्पा अपने पति की अनुपस्थिति में नील से यौन-संबंध स्थापित करती है। वैशाली अतिरिक्त पारिश्रमिक देकर नील के सान्निध्य में एक रात बिताने की माँग करती है।

---

1. सुरेंद्र वर्मा - दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृष्ठ - 125
2. वही, पृष्ठ - 102
3. वही, पृष्ठ - 100

15499

इस तरह नील पैसा कमाने लगता है। उसका सितारा ऊँचा चढ़ता हुआ दिखाई देता है। फ्लैट, टेलीफोन, कार, विदेशी प्रसाधन आदि सुविधाओं से संपन्न नील का जीवन बस गया। उसका काम सिर्फ इतना है कि आत्मा को दबाकर शरीर बेचना। अत: कुमुद से शुरु हुई यात्रा ब्लॉसम, यास्मीन, कुंतल, स्टेला, सौदामिनी, शिल्पा, करुणा, उर्वशी, पारूल तक जाती है। जयंत की पत्नी पारूल नील से गर्भवती बन जाती है लेकिन नील नैन से शादी करना चाहता है। इतना ही नहीं कि अब वह पारूल से संबंध भी नहीं रखना चाहता। यह सुनकर पारूल ऐसा खेल रचाती है कि सीधे नील को जेल हो जाए।

नील और पारूल के संबंध के बारे में उसका भाई नवीन सह नहीं पाता। अत: वह गुंडों को पैसे देकर नील को मारना चाहता है। परिणामत: पारुल का भाई नवीन नील को मारने के लिए मूर्तजा को बड़ी रकम देता हैं। लेकिन नील और भोला अच्छे दोस्त हैं। भोला मुर्तजा के अंडरवर्ल्ड में काम करता है। वह अपने दोस्त नील को मारना नहीं चाहता फिर भी नवीन भोला को नाम भूलकर मारने की सलाह देता है। लेकिन पारुल ही नील को रेल के पटरियों के नीचें धकेलकर बदला लेती है। परिणामत: नील की मृत्यु हो जाती हैं कहना आवश्यक नहीं कि दो जिंदादील युवक अमीर बनने के ख्वाब से बंबई चले जाते हैं लेकिन मुर्दा बनकर रह जाते है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो जिंदादिल युवक कुछ बनने की खातिर मुंबई तो जाते हैं लेकिन कुछ बनने के बजाय पूर्ण रूप से लूट जाते हैं। एक को सचमुच ही मुर्दा बनाया जाता है तो दूसरे की अवस्था भी मुर्दे जैसी बन जाती है। अत: वह दोनों पूर्ण रूप से मुर्दा बनकर रह जाते हैं। इन्हीं दोनों का आधार बनाकर 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' नामक उपन्यास में सुरेंद्र वर्मा एक नयी कथा के साथ उपस्थित होते हैं।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: कहना होगा कि पुरूष वेश्या आज महानगरीय पूँजीपति नारियों की माँग है। यह नारियाँ अपनी यौन-तृप्ति के लिए नील जैसे पुरुष वेश्याओं पर करोडों की पूँजी बहा रही हैं। यौन-तुष्टि की पूर्ति के लिए ये औरतें अपने बच्चों,

परिवारों, सभी नाते-रिश्ते को भी ठुकराने के लिए तैयार हैं। स्पष्ट है कि, इससे परंपरागत भारतीय विवाह संस्था डगमगाने लगी है। संबंध विच्छेद के भी दर्शन होते हैं। शादी के बाद भी ये औरतें विवाह बाह्य यौन-संबंध स्थापित करने लगी हैं। आज सभी ओर भ्रष्टाचार पनप रहा है। गुंडों, तस्करों को अपनी पनाह में रखकर ये भ्रष्टाचारी लोग नेता बनते हैं और सारी प्रशासकीय यंत्रणा को भ्रष्ट बनाते हैं। आज महानगरीय परिवेश में अनेकविध प्रकारों से पारिवारिक संबंधों में तनाव बढ़ रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री वर्ग का यह स्वच्छंद यौनाचार उत्तर-आधुनिकता के स्त्रीवादी दर्शन की ही देन है। विवाह के पूर्व यौन-संबंध भी उपन्यास में उभरे हुए परिलक्षित होते हैं। पूँजीपति औरत पारूल नील से विवाहोपरांत अवैध यौन-संबंध स्थापित करती है, तो कुमुद विवाहपूर्व नील से यौन संबंध स्थापित करती है। अवैध यौन की इन औरतों में उभरी प्रवृत्तियाँ परिवेश के अनुकूल निर्माण हो चुकी हैं। महानगरों में हर रोज बढ़ती भीड़ और यांत्रिक परिवेश का शिकार बना आदमी अपने को हताश असहाय तथा कुंठित पाता है, परिस्थितियाँ दिनों-दिन कुछ इतनी जटिल और नाजूक होती जा रही हैं कि आदमी उनका सामना करने में अपने को असमर्थ पा रहा है।

बेकारी की खाई में गुमराह होनेवाले नवयुवकों की दुखद गाथा को वाणी देने का काम इस उपन्यास ने किया है। जब तक स्त्रियाँ भी यौनस्तर पर पुरूष की तरह मुक्त नहीं हो पायेंगी तब तक सही अर्थ में नारी समानाधिकार नहीं पा सकेगी।

आज के युग में जिनके पास विपुल धन है उन्हीं को ज्यादा कीमत है और जिनके पास धन नहीं है उसे ज्यादा कीमत नहा हैं। आज की युवा पीढ़ी पैसों के लिए नौकरी करना चाहती है - चाहे वह गलत रास्ते से हो या सही। किसी-न-किसी मार्ग से पैसा कमाना ही उनका मुख्य ध्येय बन गया है। बेकारी के कारण भोला डाकू बनता है तो नील पुरुष-वेश्या बनता है। स्त्री वर्ग का यह स्वच्छंद यौनाचार पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है।

समन्वित निष्कर्ष :

अंततोगत्वा कहना सही होगा कि लेखक सुरेंद्र वर्मा द्वारा चुने गए विषय जीवन के हर एक पहलू के सही-सही दर्शन करवाते हैं। उनमें नाममात्र के लिए भी कृत्रिमता को स्थान नहीं दिखाई देता है। पारिवारिक जीवन से संबंधित उपन्यासों में अधिकतर स्त्री पात्र ही केंद्रबिंदु बने हुए हैं और प्राय: इन पात्रों का अपने पति तथा पिता के द्वारा सही प्रोत्साहन न मिलने के कारण उन्हें परिवार छोड़ना पड़ता है। कई नारी पात्रों को अर्थाभाव का सामना करना पड़ता है, इसके लिए उन्हें दर-दर भटकना पड़ता है। नारी में अवैध यौन संबंध, सेक्स, व्यसनाधिनता आदि को बढ़ने में पुरुष कारणीभूत हैं क्योंकि पति का पत्नी को सही सहयोग न मिलना, उसकी अतृप्त इच्छा पूरी न होना आदि के कारण यह समस्याएँ निर्माण होती जा रही है। सभी उपन्यासों के नारी पात्र संघर्षशील, आत्मनिर्भर, पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करनेवाले, स्वच्छंदी, कैरियर को महत्त्वपूर्ण स्थान देनेवाले और नौकरीपेशा आधुनिक नारी का अवलंब करनेवाले हैं।

विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात् परिलक्षित होता है कि सुरेंद्र वर्मा ने पिंजरे में कैद नारी को आजाद पंछी की तरह अपना स्वतंत्र अस्तित्व निर्माण करने की सलाह दी है। उनकी दृष्टि से आज की नारी पुरुषों के कंधों से कंधा लगाकर अधिकार संपादन कर रही है। वर्मा की नारी स्वतंत्र है, उसे किसी का बंधन नहीं है। वह एकाकी जीवन जीना चाहती है। वर्मा जी वे नारी को हर जगह कार्यरत दिखाना चाहते है।

वर्मा ने विवेचित उपन्यासों के जरिए महानगरीय जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को अत्यंत प्रभावी ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'अँधेरे से परे' इस उपन्यास में जित्तन नामक युवक संत्रस्त, निराशाजनक, कुंठित विचार, अकेलेपन से पीड़ित दिखाया गया है। पति से उसकी मनोकामना पूरी न होने के कारण पर पुरुष से संबंध रखती है। बच्चों के प्रति उत्तर दायित्वहीन दिखाई देती हैं। बिंदो आर्थिक स्वावलंबन और मानसिक स्वतंत्रता के कारण वह अपने जीवन को अच्छा या बुरा

बनाने के लिए स्वतंत्र है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा अविवाहित मातृत्व ग्रहण करने का अधिकार चाहती हैं। इस तरह कुँवारी माँ में नैतिकता की नयी दृष्टि झलकती है। जिसका निरुपण लेखक बड़ी सूक्ष्मता से करता है। वर्षा अपने स्वतत्र्य व्यक्तित्व को स्थापित करने के लिए विवाह की संस्था में बदलाव चाहती है। परंपरागत वर्जनाओं की मुक्ति नारी को नवीन समस्याओं में बाँधे हुए हैं।

विवेच्य उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पर्तों के भीतर छिपे हुए प्रेम और काम की तहों को अलग कर उन्मुक्त सम्बन्धों के औचित्य स्थापित करता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा विडम्बना पूर्ण सामाजिक जीवन से दूर चली जाना चाहती है। वह सारे बंधनोंको तोड़कर स्वेच्छासे नये जीवन प्रारंभ करने के लिए निकल पड़ती है। सारी सामाजिक रुढ़ीयों एवं परंपराकों तोड़कर अपने ढंग से जीना चाहती है। 'अंधेरे से परे' में दाम्पत्य जीवन में बिखराव आने से सोमू बाल्यावस्था से ही माता-पिता उपेक्षित एवं हीनता बोध ग्रंथी से ग्रस्त है। बिंदो जैसी मुक्त जीवनकांक्षी नारियाँ अवसरवादी तथा स्वार्थी होती हैं। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा फिल्म क्षेत्र में रुचि होने के कारण शादी के पहले नाम बदलना, घर-बार छोड़ना, कुँआरी माता बनना, कुँआरी माता बनने के बाद शादी न करने का फैसला करना, परिवार के प्रति संघर्ष, कला और हर्ष रूपी चाँद पाने की जिज्ञासा आदि घटनाएँ नारी के आजादी की सूचक लगती है। जो नारी के हर एक पहलू को उजागर करती है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में प्रमुख पात्र नील और भोला हैं। महानगरों में फैली भयंकर बेकारी और इस बेकारी से नील और भोला जैसे युवकों का घोर असंतोष चित्रित किया गया है। बेकारी का सामने करने के लिए नील को पुरूष वेश्या तो भोला को अंडरवर्ल्ड की पनाह लेनी पड़ती है। 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' में वर्मा जी ने स्त्री-पुरुष सम्बन्धो की व्याख्या एक नये धरातल पर की है - वह हैं पुरुष वेश्या। इस में स्त्रीयाँ पुरुषों का पैसे देकर उपभोग लेती हैं। आज पुरुष वेश्या की सहायता से महानगर की धनाढ्य, पूँजीपति औरतें, जो अधेड़ उम्र की हैं, अपने पति से यौन अतृप्ति के कारण घायल बनकर पुरूष वेश्या के माध्यम से यौन-तृप्ति का मार्ग

तलाशती हैं। अधेड़ उम्र की विवाहित, अविवाहित, विधवा, परित्यक्ता औरतों ने यौन-संबंध के क्षेत्र में पुरूष वेश्या की नई संकल्पना को साकार किया है, जो आज के आधुनिक युगबोध को साबित करती हैं। सुरेंद्र वर्मा जी ने पुरुष अनेक स्त्रियों से संबंध रखते हैं तो उन्हें पुरुष वेश्या क्यों न कहा जाय, सिर्फ स्त्री ही वेश्या क्यों ? इस तथ्य पर दृष्टिक्षेप किया है। आज नारी वेश्या की पृष्ठभूमि पर पुरुष वेश्या का निर्माण हो रहा है, जो पाश्चात्य संस्कृति की देन है। उन्होंने चार दिवारों में बंदिस्त रहनेवाली नारी को आजाद किया है। आज की नारी पुरुष से आगे जाकर अपना झंडा लहरा रही है। अब उसे किसी की फीक्र नहीं है और न किसी की चिंता वह खुद को श्रेष्ठ साबित करने के लिए जान तक देने के लिए तैयार है।

विवेच्य उपन्यासों का अध्ययन करने के उपरांत कहना होगा कि 'अंधेरे से परे' उपन्यास युवा पात्र होकर भी प्रकाश में अंधेरा महसूस होता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा एक नारी होकर भी अंधेरे को भी प्रकाश समझकर चाँद की तरफ सैर कर अपनी मंझिल को सफल करके दिखाना चाहती है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के युवक प्रकाश की ओर प्रयाण करते है, लेकिन उनके जीवन में अंधेरा छा जाता है। प्रस्तुत उपन्यास के युवतियों की माँग है जस तरह पुरुष हर जगह अपना अधिकार देखाते है। उसी तरह आज की नारियाँ पुरुषों के समान अधिकार की माँग करती है। लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में 'स्त्री-वेश्या' की तरह 'पुरुष-वेश्या' जैसी पाश्चात्य को संकल्पना को साकार किया है।

❑❑❑❑